वैदिक मण्डलादि संख्या का रहस्य

हमें चारों वेदों की संहिताओ के मण्डल काण्ड एवं अध्यायों की संख्या देख कर भी अत्यन्त आश्चर्य हुआ । स्पष्ट है कि, भगवान वेद उस संख्या द्वारा अपने प्रतिपाद्य भी श्रीकृष्ण परमात्मा की ओर ही संकेत कर रहे हैं । पाठक जानते ही हैं कि भगवान विष्णु के अनन्त अवतार होने पर भी प्रधानतम अवतार चौबीस हैं । उनमें भी भावभक्ति के विशेष आराध्य अवतार दस ही हैं । प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण के दशावतारों के अभिप्राय से ही ऋग्वेद के मण्डलों की संख्या दस है । अवतार ही नहीं भगवान की सर्ग विसर्गादि लीलाएँ भी दस ही हैं । (ऋ. २-१०-१/१२-१-९) दशविद्या अवतार और उनकी दश विद्या लीलाओं के संकलन से २० की संख्या बनती है जो अथर्व वेद के काण्डो की विशति (२०) संख्या को सहजतः बुद्धयारूढ करती है । भक्ति शास्त्र के अभ्यासियों से यह बात छिपी नही है ।

तीन प्रकार की लीलाएँ

लीलाएँ ३ प्रकार की हैं वास्तविकी, व्यवहारिकी, और प्रतिभासिकी । नित्य गोलोक धाम में नित्य पार्षद एवं सहचरी गोपीगणों के साथ प्रभु को जो नित्य लीला है । वह वास्तविक है । उनके धराधाम पधारने पर पृथ्वीस्थित वृन्दावन मे भावुकों को सौभाग्यवश जिस लीला का दर्शन होता है वह व्यावहारिकी है, तथा भगवान गोलोक, धराधाम या कहीं भी क्यों न हो भावुक भक्तो के भावना राज्य में ध्यान परिपाक के फल स्वरूप जो लीलाएँ दृष्टि गोचर होने लगती हैं उन्हें प्रतिभासिकी कहा जाता है । प्रभु के दशावतार की १० संख्या का ३ से गुणन करने पर ३० प्रकार की भगवद् लीलाएँ हो जाती है । इस ३० संख्या मे १० अवतार संख्या को जोड दे तो योगफल ४० होता है । यजुर्वेद के अध्यायो की ४० संख्या का संकेत करती है ।

सामवेद इससे भी दो पग आगे बढकर उन के पूर्णावतार होने की घोषणा करता है । सामवेद दो भागों में विभक्त है, पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक । पूर्वार्चिक मे ५ अध्याय और ६ प्रपाठक हैं । आरण्यक पूर्वार्चिक का ही परिशिष्ट माना गया है । महानाग्नि आर्चिक उसी का अंश है । प्रपाठक के विभाग पक्ष से उसे १ वा प्रपाठक ही मानना होगा, जब कि अध्याय पक्ष मे उसे षष्ठाध्याय की संज्ञा दी गई है । उत्तरार्चिक के ९ प्रपाठक तथा २१ अध्याय हैं । इस प्रकार पूर्व और उत्तर आर्चिक के कुल प्रपाठको की संकलित संख्या १६ हुई जो श्रीकृष्ण भगवान १६ कलाओ का अभिव्यजन करती है । तात्पर्य यह है कि, सामवेद श्रीकृष्ण की १६ कलाओ के संकेत से उन के पूर्णावतारत्व का उदघोष करता है । उस के अध्याययों की संख्या संकलन करने पर २१ होती है ।

यह संख्या विवेचनीय है । भगवान के ऐश्वर्यादि ६ गुण और १ वा गुणी ही भगवान । १ संख्या गुणपति सहित उस के ६ गुणो को इंकित करती है । भगवान के दशविध अवतार एवं दशावध लीलाओं के साथ गुण एवं गुणी की संख्या संकलित करने से अध्यायो की २१ संख्या निकल आती है ।

श्रीमद् भागवत में

एते चांश कलाः पुसः कृष्णस्तु भगवान स्वयम् । १-३-२८

इस तरह निःसंदेह कहा जा सकता है कि भागवत की तरह वेद भी भगवद् गुणगान मे नितान्त अनुरक्त तथा आसक्त है । अत एव गीता १५-१५ में भगवान को भी मुख से कहना पडा 'वेदैश्च सर्वे सहमेव वैद्यः । अर्थात् समस्त वेदो का प्रतिपाद्य मे ही हूँ ।

कठोपनिषद की 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, १-२-१५

उक्ति भी यही अभिप्राय है ।

इतना ही क्यों वेद सर्वस्व गायत्री मन्त्र भी प्रभुलीला का निर्देशक है ।

देखिये –

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ऋग्वेद - ३-६२-१० सामः १४६२ वा.य. ३, ३५ २२, २८, ३०, २
३६, ३ तै. सं. १-५-६-४, ४-१-११-१
तै.आ. १-११-२ ।

भाष्य-सवितु = जगदुत्पादकस्य द्योतमानस्य आदित्यस्य ।
वरेण्यम्-वरणीयम् यामातृत्वेन अंगीकरणीय, भागवते
तपनसुतायाः यमुनायाः श्रीकृष्णपत्नित्वेन वर्णनात्
भर्गः – भर्जकम् नरकादि दैत्य दाब दाहकम् तत् प्रख्यातं श्रीकृष्णाख्य तेजः ।
धीमही = चिन्तयामः । यः = कृष्णः नः = अस्माकम धियः = प्रज्ञाः
प्रचोदयात् =
प्ररेयेत गीतोपदेशेन कुमारगीन्निवर्त्य सन्मार्गे समानयति प्रवर्तयतीत्यर्थः ।

भावार्थ – जगतके उत्पादक प्रकाशमान सूर्यनारायण ने जिसे अपना जामाता बनाना स्वीकार किया है (इस का पोषक भागवत मे तपनसुता यमुना जी का श्रीकृष्ण के साथ विवाह प्रसंग है) और जो नरकादि दैत्यवन के दाहक हैं, उन तेजोमय श्रीकृष्ण स्वरूप का हम चिन्तन करते हैं, जो हमें कुमार्ग से हटा कर सन्मार्ग मे लाते हैं । जो कृष्ण हमारी बुद्धि के प्रेरक हैं । अर्थात गीतोपदेश द्वारा कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करते है । इस तरह स्पष्ट है कि, वेद ही नही, नितान्त समादरणीय वेदमाता गायत्री भी लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं के वर्णन मे मुखरित है । वेदमाता गायत्री के प्रपाद्य श्रीकृष्ण तत्व का निरूपक होने भागवत पुराण का यह लक्षण किया गया है ।

यच्चाधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः ।
वृत्रासुर पधोपेतं तद् भागवत मुच्यते ॥
अष्टादश सहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम्

मत्स्य पु. ५३-२७-२२